IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

राजस्थानी लोक संगीत के संरक्षण और संवर्धन में लंगा, मांगणियार, मिरासी तथा जोगी जातियों का योगदान : पश्चिमी राजस्थान के विशेष संदर्भ में

पवन घारू
शोधार्थी,
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

डॉ. स्वाति शर्मा
सहायक आचार्य,
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

सारांश :–

राजस्थान सांस्कृतिक दृष्टि से हमेशा सुदृढ़ रहा है, जिसमें लोकसंगीत सांस्कृतिक धरोहर का एक प्रमुख अंग रहा है। पश्चिमी राजस्थान का लोक संगीत केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन के विविध पक्षों जैसे धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक का भी पूर्ण परिचायक है। पश्चिमी राजस्थान के लोक संगीत और लोकगीत परंपरा के संरक्षण और संवर्धन में वहाँ की विशेष संगीतजीवी जातियों जैसे लंगा, मांगणियार, मिरासी तथा जोगी जातियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन्हीं विशेष जातियों के लोगों द्वारा पीढ़ी–दर–पीढ़ी मौखिक परंपरा के माध्यम से लोक गीतों का संचार किया गया और विभिन्न उत्सव तथा अवसरों पर अपनी विशिष्ट गायकी द्वारा लोकसंगीत को जीवित रखने तथा इसे जन–जन तक पहुंचाने का अद्‌भुत कार्य किया गया है। प्रस्तुत शोध–पत्र पश्चिमी राजस्थान के विशेष संदर्भ में लंगा, मांगणियार, मिरासी और जोगी जैसी संगीतजीवी जातियों की परंपराओं तथा उनके द्वारा राजस्थानी संगीत के संरक्षण और संवर्धन हेतु योगदान का अध्ययन करना है।

मुख्य शब्द :– राजस्थानी लोकसंगीत, पश्चिमी राजस्थान, लंगा जाति, मागणियार जाति, मिरासी जाति, जोगी जाति, संरक्षण, संवर्धन।

परिचय –

राजस्थान की लोकसंगीत परंपरा ने इसे सांस्कृतिक रूप से अत्यंत संपन्न बनाया है। पश्चिमी राजस्थान के लोकगीतों का अपना विशिष्ट स्वरूप और स्वतंत्र अस्तित्व रहा है। यह मरुस्थलीय क्षेत्र सदैव अपनी परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों का पालन करता आया है तथा बाहरी सभ्यताओं के प्रभाव से प्रायः अप्रभावित रहा है। इसी दृष्टि से यहाँ के अधिकांश लोकगीत परंपरागत तथा अपने विशुद्ध रूप में लोकप्रिय है।

यहाँ का लोकसंगीत केवल स्वर और ताल की कला नहीं, बल्कि लोकजीवन की आत्मा है, जो जनमानस की भावनाओं, परंपराओं और आस्थाओं से जुड़ा है। पश्चिमी राजस्थान का लोकसंगीत अपनी विशिष्ट धुनों, रागों और प्राचीन परंपराओं के कारण देश–विदेश में प्रसिद्ध है। मरुभूमि की कठिन जीवन परिस्थितियों के बावजूद यहाँ के लोकगीत लोगों के जीवन का आधार है, जिनके जरिए वे अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं।

राजस्थान हमेशा वीरों और त्याग की भूमि रही है। यह लोक देवी–देवताओं की भूमि भी है, जिन्हें लोग अपने रक्षक मानते हैं। यहाँ की लोकगाथाओं और गीतों में वीरता और देवी–देवताओं के गुणों का वर्णन मिलता है। जो राजस्थान के लोक संगीत को अधिक समृद्ध बनाते हैं।

पश्चिमी राजस्थान के लोकगीतों और लोकसंगीत परंपरा को कई संगीतजीवी जातियों लंगा, मांगणियार, मिरासी, जोगी, ढोली, ढाढी, कालबेलिया, रावल, डूम, भोपा, राणा और राव ने पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ाया। इन जातियों ने मौखिक परंपरा के माध्यम से लोकगीतों का संचार किया और अपने संगीत द्वारा सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन को जोड़कर इसे संरक्षित किया। इन्होंने अपने गीतों के जरिए राजस्थान के गौरवशाली इतिहास को लोगों तक पहुंचाया हैं और देवी–देवताओं के गीतों द्वारा धार्मिक व आध्यात्मिक दृष्टि से भी लोगों को जागृत किया है।

पश्चिमी राजस्थान के लोकगीतों और लोकसंगीत परंपरा को मुख्यतः लंगा, मांगणियार, मिरासी और जोगी जातियों ने पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ाया है। इन संगीतजीवी समुदायों ने गुरु–शिष्य परंपरा के माध्यम से लोकसंगीत की निरंतरता बनाए रखी और जजमानी प्रथा को संरक्षित करते हुए लोकजीवन से अपने गहरे संबंध को बनाए रखा। इन्होंने पारंपरिक गीतों के साथ–साथ वाद्य परंपराओं को सुरक्षित रखकर लोकसंगीत की अस्मिता को अक्षुण्ण बनाए रखा।

साथ ही, अपने लोकगीतों के माध्यम से समाज को सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एकीकृत किया तथा पश्चिमी राजस्थान की भाषा और साहित्यिक परंपरा को सुदृढ़ किया है। अतः प्रस्तुत शोध में पश्चिमी राजस्थान के लोकसंगीत परंपरा के संरक्षण और संवर्धन में लंगा, मांगणियार, जोगी एवं मिरासी जातियों की भूमिका का विश्लेषण किया गया है।

लंगा जाति –

राजस्थानी लोकसंगीत परंपरा में लंगा जाति एक प्रमुख स्थान रखती है। इस जाति के लोग विशेष रूप से जैसलमेर, बीकानेर और जोधपुर जिलों में निवास करते है तथा इसके कई परिवार पाकिस्तान में भी रहते हैं।

लंगा जाति मुस्लिम समुदाय से संबंधित जाति है, किंतु इनकी गायकी परंपरा मे हिंदू देवी–देवताओं, लोक कथाओं और वीरों की गाथाओं का समावेश भी दिखता है इसलिए इनमें हिंदू और मुस्लिम दोनों के गुणों और परंपराओं का समावेश है, इनके गायन में भक्ति के अतिरिक्त सूफी, प्रेम और लोक कथाओं का भी गहरा समावेश मिलता है। यह बचपन से संगीत सीखकर अपनी परंपरागत परंपरा को आगे बढ़ाते हैं।

इनकी वेशभूषा, खान–पान और रीति–रिवाज हिंदुओं के समान ही हैं। इस जाति के लोगों की आजीविका जजमान प्रथा पर आधारित रही है। वर्तमान में भी अनेक परिवार अपने संरक्षक राजपूत और सिंधी सिपाही जातियों पर आश्रित हैं।

इनके गायन में शास्त्रीय रागों की छाया भी स्पष्ट दिखाई देती है। यह मौखिक परंपरा से संगीत सीखते और सिखाते हैं, जिसमें गुरु–शिष्य परंपरा की विशेष भूमिका रही है। इनके गीतों में स्वर, ताल और राग का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है, जिससे इनके गीतों में और अधिक मधुरता प्राप्त होती है और सामान्यतः यह कलाकार अपने गायन के साथ सारंगी का प्रयोग करते हैं।

"डॉ. कोमल कोठारी के अनुसार सतारा वादक लंगे सतारा पर पलटो व अलंकारों का वादन इतनी सुंदरता के साथ करते हैं कि सुनकर मन मुग्ध हो जाता है लंगा जाति के लोग सातारा पर संपूर्ण चीजें गायकी व स्वरों के समूह को बजा लेते हैं, साथ ही उन्हें गीतों में लयबद्ध कर लेते हैं।"

वर्तमान समय में लंगा समुदाय दो उपजातियों सुरणइया लंगा और सारंगिया लंगा में विभाजित है। सुरणइया लंगा जाति के लोग मुख्यतः वादन परंपरा से जुड़े हैं तथा सुरणई के साथ मुरला, मोरचंग और अलगोजा बजाने में दक्ष माने जाते हैं तथा यह सर्वप्रथम सारंगी पर पाणिहारी नामक गीत सीखते हैं। दूसरी ओर सारंगिया लंगा जाति की पहचान सारंगी वादन तथा गायन दोनों से होती है। ये कलाकार न केवल सारंगी बल्कि पुंगी, सुरिन्दा, सिंधी सारंगी एवं गुजराती सारंगी जैसे वाद्यों के कुशल वादक भी हैं।

लंगा जाति ने राजस्थान की लोकसंगीत परंपरा और माङ परंपरा को संरक्षित और संवर्धित किया है। साथ ही कई वाद्यों जैसे सारंगी, सुरणई, सतारा, मोरचंग, कमायचा, खड़ताल, गुजरात सारंगी, सिंधी सारंगी, सुरिन्दा आदि को जीवित रखा है। सामाजिक और धार्मिक अवसरों पर इनके लोकगीत लोगों में आनंद और एकता का भाव जगाते हैं, साथ ही इनकी पारंपरिक वेशभूषा और सांस्कृतिक रीति–रिवाज भी राजस्थान की सांस्कृतिक पहचान का अभिन्न अंग है।

वर्तमान में इन कलाकारों ने राजस्थानी लोकसंगीत और संस्कृति को भारत के साथ–साथ विदेशों में भी मान्यता दिलाई है, जो की सांस्कृतिक दृष्टि से संपूर्ण राजस्थान के लिए गौरवपूर्ण है। इन कलाकारों में शुमार खाँ लंगा, अलादीन खाँ लंगा, करीम खाँ लंगा, कम्मो खाँ लंगा, मूसे खाँ लंगा, मेहरुद्दीन खाँ लंगा आदि प्रमुख

कलाकार है, जिन्होंने अपनी साधना और कला के माध्यम से राजस्थान की लोकसंगीत परंपरा को जीवित रखने के साथ–साथ उसे नई ऊँचाइयों तक पहुँचाने का भी महत्वपूर्ण कार्य किया है।

मांगणियार जाति–

राजस्थान के पश्चिमी भाग, विशेषतः बाड़मेर, जैसलमेर बीकानेर और जालौर जिलों में मांगणियार जाति लोकसंगीत और वाद्य परंपरा से संबद्ध एक प्रमुख समुदाय है। "मांगणियार" शब्द का तात्पर्य माँगकर जीविकोपार्जन करना है। अतः इन्हें मंगत भी कहा जाता है। इन लोगों की गायन–वादन ही रोजी–रोटी है तथा यह किसी भी प्रकार का उद्योग, व्यापार, नौकरी तथा कृषि नहीं करते हैं।

मांगणियार समुदाय का सामाजिक और सांस्कृतिक स्वरूप हिन्दू और मुस्लिम दोनों परंपराओं से प्रभावित रहा है। यह विवाह संस्कारों में निकाह की परंपरा अपनाते है, रमजान के अवसर पर रोज़ा रखते हैं, किंतु अन्य वैवाहिक विधि तथा त्यौहार हिन्दू परंपरा के अनुसार सम्पन्न करते हैं तथा देवी देवताओं के भजन तथा स्तुति गान भी कहते हैं।

इस जाति के लोगों की उपजातियाँ भी है जो की "गेला" और "खरेड़" नाम से जानी जाती हैं। गेला की उत्पत्ति पालीवाल ब्राह्मणों से मानी जाती है, जो देवी मंदिर में ढोल बजाने की परंपरा से संबंधित है तथा खरेड़ की उत्पत्ति राजपूतों से हुई, जिनमें से एक ने कामायचा वादन से अलग पहचान बनाई।

संगीत के क्षेत्र में मांगणियार जाति का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। कामायचा, ढोलक और खड़ताल इनके मुख्य वाद्य रहे हैं, जिनके साथ ये विविध रागों तथा गीतों का गायन करते हैं। इसके अतिरिक्त सूरमंडल, सुरनई, अलगोजा, मोरचंग, इकतारा आदि वाद्यों को बजाने में भी निपुण होते हैं। मुख्यतः इनकी विशिष्ट कामायचा वादन शैली ने राजस्थान के लोकसंगीत को राष्ट्रीय ही नहीं, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रतिष्ठा दिलाई है।

डॉ कोमल कोठारी राजस्थान की लोक–संस्कृति उन्नयन में एक प्रमुख शोधकर्ता थे, जिन्होंने अपने संपूर्ण जीवन में लंगा जाति और मांगणियार जाति जैसी गायन–वादन परंपराओं को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पहचान दिलाने में महत्वपूर्ण कार्य किया। सन 1960 में जोधपुर जिले के बोरूंदा कस्बे में रूपायन नामक संस्थान की स्थापना की, जो की राजस्थानी लोकगीतों, लोक वाद्यो, साहित्य कथाओं, कहावत आदि की परंपरागत तथा ऐतिहासिक धरोहर को खोज कर उनका क्रमबद्ध रूप से संकलन करना मुख्य उद्देश्य था।

वर्तमान में मांगणियार समुदाय के कई कलाकारों ने देश–विदेश में प्रस्तुतियाँ देते हुए राजस्थान की लोकसंगीत परंपरा के संरक्षण और संवर्धन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं, जिनमें लाखा खाँ मांगणियार, साकर खाँ मांगणियार, हकीम खाँ मांगणियार, राणे खाँ मांगणियार, भंगूर खाँ मांगणियार, चादंन खाँ मांगणियार, सादिक खाँ मांगणियार, अनवर खाँ मांगणियार, मांगणियार प्रमुख कलाकार है, जो राजस्थान की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर की जीवंत अभिव्यक्ति के प्रतीक हैं।

मिरासी जाति–

मिरासी समुदाय मुस्लिम जाति है, जो पीढ़ियों से गायन वादन के साथ–साथ हिंदुओं के भाटों की तरह वंशावली सुनाने का कार्य करते आ रहे हैं। यह लोग मुख्यतः अलवर, जैसलमेर, जोधपुर, नागौर, डीडवाना, मारवाड़ और जयपुर क्षेत्रों में निवास करते हैं। ये अपनी स्त्रियों को भी गाना और नृत्य सिखाते हैं तथा अपने मुख्य व्यवसाय के रूप में गायन ही नहीं बल्कि सारंगी वादन तथा नौटंकी खेलों में भी सम्मिलित होते हैं। इस समुदाय की कुछ उपजातियां है जो कानोता, जोड़ा और कालेट नाम से जानी जाती है मिरास शब्द को अरबी से जोड़ा है।

इस जाति के लोग अपना अस्तित्व अरब से बताते हैं और इनका मत है कि पैगम्बर साहब की शादी में इनके द्वारा गाया–बजाया गया था, इसलिए इन्हें "मिरासी" कहा गया। परन्तु वास्तव में ये भारतीय मूल के हैं, जिन्होंने हिंदुस्तान में ही इस्लाम धर्म अपना लिया था। अरब देश के गाने वालों को मिरासी के स्थान पर मुघन्नी और मुर्तबत नाम से जाना जाता है। कानोता उपजाति के मिरासी जाति अपने पूर्वजों को गौड़ ब्राह्मण मानते हैं।

मिरासियों की स्त्रियाँ अच्छी गायिका मानी जाती हैं। इनके वस्त्र प्रायः पैजामा, कुर्ता और अचकन होते हैं। अलवर में इन्हें "मेवाती" भी कहा जाता है। इनके जजमान प्रायः बनिया, ब्राह्मण, राजपूत, पठान, सैयद, मुगल व खान आदि होते हैं। शादी–ब्याह तथा ईद के अवसर पर इन्हें नेग के रूप में धन, बकरा आदि के रूप में आर्थिक सहायता मिलती है। कई बार राजा, नवाब और रईसों से इन्हें जागीरें भी प्राप्त होती है।

मेवात में मिरासियों की बावन गोत्र प्रचलित है। बीकानेर जिले के बीदासर क्षेत्र में इनकी बड़ी संख्या में लोग निवास करते है, जहाँ इन्हें ठाकुर द्वारा जागीरें व आर्थिक सहायता प्राप्त है। इस क्षेत्र में दीपा, रूपा तथा जमाल आदि मिरासी कलाकार तबला वादन में निपुण है। जैसलमेर जिले में भी इस जाति के कलाकारों की अच्छी बस्तियां है, जिनमें रामा, रुपसी, मोकल, भादासर, शानू, हमीरा, हरबूट, लागेला, उवड़ी, सांकरा आदि प्रमुख है। मिरासी तबला और गायन में अत्यंत दक्ष होते हैं।

वर्तमान में राजस्थान की मांड गायकी परंपरा के संरक्षण और संवर्धन में इनका बड़ा योगदान है। मांड में दोहों की प्राथमिकता रहती है जिसका गायन यह भली भांति करते हैं –

दोहा : साजण डोर स्नेह की, मत दीजो छिटकाय।
टूटा पाछे ना सधे, बीच गांठ रह जाय।।

इस जाति के कलाकार पीढ़ी दर पीढ़ी गायकी और वादन कला सीखते और सिखाते रहे है। इनके द्वारा गाई जाने वाली मांड गायकी और तबला वादन ने न केवल लोगों का मनोरंजन किया बल्कि सामाजिक और धार्मिक अवसरों में जीवन को सांस्कृतिक रूप से और अधिक संपन्न बनाया है। इनके संगीत ने राजस्थान की लोक संस्कृति को राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्रदान कराई है। जिनमें कई कलाकार जैसे – युसूफ खाँ, जमीला बाई (मांड गायिका), दपु खाँ, मुख्तियार अली, सरवर मिरासी आदि मुख्य है। इस प्रकार यह मिरासी समुदाय केवल संगीत के संरक्षक ही नहीं, बल्कि राजस्थान की सांस्कृतिक पहचान को भी जीवित रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

जोगी जाति–

इस जाति की उत्पत्ति शिव से मानी जाती है। इस जाति में समय–समय पर कई चमत्कारी महापुरुष हुए। प्रारम्भ में जोगी वही कहलाता था, जो योग की कठोर साधना करता था। परन्तु बाद में अनेक जोगियों ने गृहस्थ जीवन अपनाकर गाँवों और कस्बों में रहना शुरू कर दिया। यह लोग गेरुए वस्त्र धारण करते हैं और कानों में विशेष प्रकार की मुद्राएँ (कुण्डल) पहनते हैं। यह भरथरी, गोपीचंद तथा शिवजी का ब्यावाला आदि प्रबंध गीतों का गायन चातुर्मास में करते हैं तथा कुछ लोग निहालदे सुल्तान के पावडे का गायन भी करते हैं।

जोगी समुदाय के लोग गुरु गोरखनाथ और मच्छंदरनाथ को अपना गुरु मानते हैं। तान्त्रिक मत वाले गोरखनाथ जी को ग्यारह रुद्रों जैसे –शिवजी, गोरखनाथ जी, भैरवनाथ जी, हनुमान जी, स्वामिकार्तिक, दुर्वासा, कामदेव, संतनाथ, रामनाथ, श्रृंगनाथ, धर्मनाथ में मानते है।

जोगी लोग शिव की आराधना करते हैं, भस्म का तिलक लगाते हैं और मांस–मदिरा सेवन भी करते हैं। इनके मंदिर मठ और आसान कहलाते हैं, जिनमें महादेव जी की मूर्ति होती है। इनमें चेला मूंडने की परम्परा भी प्रचलित है।

राजस्थान में जोगी जाति के कई उपवर्ग पाए जाते हैं, जिनमें मुख्य रूप से – औघड़ जोगी, अघोरी जोगी, रावल जोगी, कनफटे जोगी और मसाण्या जोगी हैं।

जिसमें औघड़ जाति के मतानुसार हिंगलाज देवी के मंदिर में शिष्यों के कान छेदन की परंपरा को बंद करने के बाद इन्हें नाथ से औघड़ जोगी कहा गया। यह लोग चोटी रखने की परंपरा का पालन नहीं करते।

अघोरी जोगी औघड़ जोगियों से उत्पन्न माने जाते हैं और अधिकतर समय श्मशान में रहते हैं। चमत्कारिक सिद्धियों से युक्त यह लोग मौन रहते हैं। अपनी जीविकोपार्जन हेतु भीख मांगते हैं। अघोरी जोगी मैली विद्या मैं भी बहुत निपुण होता है तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं। लोग अपनी कार्य सिद्धि हेतु इनकी खूब सेवा करते हैं।

रावल जोगी गाँव और शहर में प्रातःकाल परिक्रमा देते हैं। हाथ में झंडी लेकर, कान में कुण्डल और गेरुए वस्त्र पहनकर लोगों के घरों में सुख–शांति के लिए सींगी वाद्य बजाते है तथा गीत गाकर कुछ पंक्तियां बोलते हैं –

रावल जोगी क्या धन मांगे।	खीरखाण्ड का भोजन मांगे।।
कजलीवन का हाथी मांगे।	सूरजजी का रथ भी मांगे।।
खुरासान का घोड़ा भी मांगे।	दलबादल का डेरा मांगे।।
मोहना भोग का लोंदा मांगे।	ऊपर घी का झारा मांगे।।
तीजे पहर तिजारा मांगे।	खड़–खड़ करता खाजा मांगे।।
गाड़े भरा रुपैया मांगे।	लाल पाट का बागा मांगे।।

कनफटे जोगी अपनी उत्पत्ति भगवान शिव से बताते हैं और शिव व हिंगलाज देवी को अपना आराध्य मानते हैं। ये सैली, सींगी, भभूत, रुद्राक्ष और मुद्राओं को धारण करते हैं तथा गेरुए वस्त्र पहनते हैं।

मसाण्या जोगी शमशान में रहने वाले जोगियों का समूह है, जिन्हें चिड़ियानाथ के शिष्य माना जाता है। इन्हें मृतकों का कफन लेने का अधिकार प्राप्त है। यह सिंगी, रुद्राक्ष धारण करते हैं और शिंग से बनी सिंगी का पूजन कर भोजन के समय इसे बजाते हैं। इस जाति का प्रमुख प्रतीक मुद्रा धारण करना है इसके पश्चात यह किसी दूसरी जाति को नहीं अपना सकते हैं जिसकी प्रमुख कहावत प्रचलित है

राख लगाया घोई लै॥

कान फाड़ने घोई लै॥

यह मुद्रा धारण करते समय खुशी मनाते हैं। इनके विवाह हिन्दुओं की तरह सम्पन्न कराए जाते हैं।

गृहस्थ जोगी इकतारा, सारंगी, मशक या चिकारा पर भजन और गाथाएँ गाते हैं। वे ढोला मारू, भर्तृहरि और निहालदे सुल्तान जैसी लोक गाथाएँ भी गाते हैं। समय के साथ इनकी रहन–सहन, गायन तथा पहनावे में बदलाव आया है, पर आज भी नागौर, सीकर, झुंझुनू, अलवर, कोटा और सवाई माधोपुर में इस प्रकार के परिवार मिलते हैं।

जोगी जाति ने राजस्थान की लोकसंगीत परंपरा को भक्ति, तंत्र और लोकजीवन से जोड़कर एक विशेष स्वर प्रदान किया है। इनके इकतारा, सारंगी, मशक और सींगी जैसे वाद्यों पर गाए गए भजन, गाथाएँ और लोककथाएँ लोकसाहित्य को जीवंत रखने में सहायक सिद्ध हुई है और इनके द्वारा प्रयुक्त वाद्यों जैसे मादल, डमरु, रावणहत्था, सुरनाई, जोगिया सारंगी, टोटो आदि ने इनकी पारंपरिक वाद्य परंपरा को जीवित रखा है।

ढोला–मारू, भर्तृहरि व अन्य गाथाओं का प्रसार लोगों में जोगियों के माध्यम से ही सफल हुआ। वर्तमान में भले ही इनकी जीवनशैली में कई उतार चढ़ाव तथा परिवर्तन आया हो, परंतु इनके गीत और वादन परंपरा राजस्थान की सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण और संवर्धन के रूप में अत्यंत उपयोगी रही है।

निष्कर्ष –

यह शोध–पत्र पश्चिमी राजस्थान की लंगा जाति, मांगणियार जाति, मिरासी जाति और जोगी जातियों के सांगीतिक योगदान का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करता है। जिसमें निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि राजस्थान की सांस्कृतिक धरोहर को जीवित रखने में इन जातियों ने अपना कीमती योगदान दिया है। इन जातियों ने संगीत को केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं रखा बल्कि सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परंपराओं के परिप्रेक्ष्य से इसे सुरक्षित रखा है।

लंगा जाति और मांगणियारों जाति द्वारा जजमानी प्रथा के अंतर्गत पीढ़ी दर पीढ़ी संगीत प्रस्तुति द्वारा लोक परंपराओं को कायम रखा इनके गीतों और वाद्यों में भक्ति, सूफी, प्रेम और लोक गाथाओं का सुंदर संतुलन देखने को प्राप्त होता है। जोगी जाति द्वारा लोकजीवन को भक्ति से जोड़ते हुए लोकगाथाओं और भजनों के

माध्यम से समाज को सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्यों से अवगत कराया। वहीं मिरासी समुदाय ने गायन–वादन और मांड गायकी की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए राजस्थान की संगीत परंपरा को नई ऊंचाइयाँ प्रदान की है।

इन जातियों ने गुरु–शिष्य परंपरा के माध्यम से न केवल संगीत की विविध शैलियों और वाद्यों को संरक्षित किया, बल्कि समस्त जन की भावनाओं, आस्थाओं और सामाजिक समरसता को भी बनाए रखने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आधुनिक समय में भी इन कलाकारों द्वारा दुनिया के हर कोने में अपनी अद्भुत प्रस्तुतियों द्वारा राजस्थान की लोकसंगीत परंपरा को वैश्विक स्तर तक प्रतिष्ठा प्रदान करवाई है।

अतः कहा जा सकता है कि लंगा, मांगणियार, मिरासी और जोगी जैसी जातियाँ राजस्थान की संगीत विरासत का एक संजीव अंग है, जिसने अपनी निरंतर संगीत साधना, परंपरा और अद्भुत कला से लोकसंगीत को न केवल संरक्षित और संवर्धित किया बल्कि आगामी पीढ़ियों के लिए इसे प्रेरणा का स्रोत भी बनाया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. कल्ला, डॉ वंदना, राजस्थान के लोक तत वाद्य, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, 2014
2. भट्ट, डॉ कृष्ण, राजस्थान की रजवाड़ी गायकी मांड, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2019
3. जोड़, मोहनलाल, कालबेलिया रू गीत और नृत्य, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, 2011
4. मरदुम शूमारी रिपोर्ट राजमारवाड़ पृ.252, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केंद्र जोधपुर 2019
5. कल्ला, डॉ वंदना, राजस्थान के लोक तत वाद्य, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, 2014
6. चक्रवर्ती, डॉ कविता, राजस्थान के लोक वाद्य, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, 2024
7. सांभर, देवीलाल, वर्मा, गींडाराम, राजस्थान का लोक संगीत, 2019
8. बोराणा, रमेश, राजस्थान के लोक वाद्य, राजस्थानी ग्रंथागार राजस्थान संगीत नाटक अकादमी जोधपुर, 2012
9. बोराणा, रमेश, राजस्थान के कल गौरव , राजस्थान संगीत नाटक अकादमी जोधपुर,2003
10. चौधरी, प्रताप सिंह, राजस्थानरू संगीत और संगीतकार, राजस्थानी ग्रंथागार, 2009
11. जैन, डॉ हुकुमचंद, माली, डॉ नारायण लाल, राजस्थान का इतिहास, संस्कृति, परंपरा एवं विरासत, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी 2022
12. गहलोत, जगदीश सिंह, मारवाड़ के ग्राम गीत, राजस्थानी ग्रंथागार,1998